International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2025; 11(2): 116-120
© 2025 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 23-02-2025
Accepted: 27-03-2025

Aabha
Pursuing Ph.D. Deparftment of Sanskrit Vyakaran from University of Delhi, Delhi, India

Corresponding Author:
Aabha
Pursuing Ph.D. Deparftment of

पाणिनीय व्याकरणपरंपरा में उदाहरण - प्रत्युदाहरण : एक विवेचन

Aabha

सारांश

प्रस्तुत शोधपत्र का विषय पाणिनीय व्याकरणपरंपरा में उदाहरण - प्रत्युदाहरण : एक विवेचन है । इसके अंतर्गत मुख्यतः पाणिनीय व्याकरणपरंपरा, उदाहरण - प्रत्युदाहरण तथा पाणिनीय व्याकरणपरंपरा में उदाहरण - प्रत्युदाहरण इन तीन बिंदुओं की यथासंभव विवेचना का प्रयास किया गया है ।

कूट शब्दः व्याकरणपरंपरा, प्रत्युदाहरण, बिंदुओं

प्रस्तावना

सर्वप्रथम पाणिनीय व्याकरणपरंपरा के विषय में विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि यद्यपि अतीत में आचार्य पाणिनि से पूर्व भी अनेक वैयाकरण हुए तथा उन्होंने भी अनेक व्याकरणग्रंथों की रचना की किंतु आचार्य पाणिनि द्वारा सूत्रशैली में रचित ग्रंथ अष्टाध्यायी व्याकरणपरंपरा का आधारस्तंभ सिद्ध हुआ । इस ग्रंथ में आचार्य पाणिनि ने अत्यंत संक्षिप्त एवं सारगर्भित रूप में षड्विधसूत्रों का प्रणयन किया । शनैः - शनैः यह ग्रंथ संस्कृतव्याकरण का पर्याय बन गया एवं इसी प्रकार व्याकरण की एक नई परंपरा प्रारंभ हुई जिसे पाणिनीय व्याकरणपरंपरा के नाम से जाना गया । इसी परंपरा का संवहन करते हुए कालान्तर में आचार्य कात्यायन ने पाणिनीय व्याकरण में उक्त, अनुक्त, दुरुक्त [1] को आधार बनाकर पाणिनीय सूत्रों के पूरक के रूप में वार्तिकशास्त्र की रचना की । तदनंतर आचार्य पतञ्जलिविरचित महाभाष्य भी इस परंपरा का संवाहक बना । आगे चलकर पाणिनीय व्याकरणपरंपरा के अंतर्गत एक अन्य धारा का प्रादुर्भाव हुआ जिसे प्रक्रियापरंपरा के नाम से जाना गया । प्रक्रियापरंपरा ने आचार्य पाणिनिकृत सूत्रों को तो प्रायशः स्वीकार किया किंतु सूत्रक्रम को नहीं । प्रक्रियापरंपरा का प्रथम प्रयास १२वीं शताब्दी में आचार्य धर्मकीर्ति द्वारा ग्रंथ रूपावतार के रूप में किया गया । तत्पश्चात् इस परंपरा में धातुप्रत्ययपंचिका, प्रक्रियाकौमुदी, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी तथा लघुसिद्धान्तकौमुदी आदि अनेक ग्रंथों की रचना हुई ।

इसी क्रम में विभिन्न वैयाकरणों के सतत अध्ययन तथा कठिन परिश्रम के परिणामस्वरूप यह व्याकरणपरंपरा कालक्रमानुसार प्रौढ़ातिप्रौढ़ रूप धारण करती रही । अद्यप्रभृति यह परंपरा समस्त संस्कृतशास्त्र में अपने प्राचीन रूप में पूर्ण गौरव के साथ विद्यमान है ।

अब पाणिनीय व्याकरणपरंपरा के संबंध में विचार करने के पश्चात् शंका होती है कि व्याकरण शब्द का अर्थ क्या है ? इस विषय में महाभाष्यकार आचार्य पतञ्जलि अपने ग्रंथ में लिखते हैं कि उदाहरण - प्रत्युदाहरण व वाक्याध्याहार ये सब मिल-जुलकर व्याख्यान बनता है एवं ऐसी अवस्था में ही व्याकरण शब्द का अर्थ मानना चाहिये [2] |

अतः यहाँ शंका होती है कि उदाहरण - प्रत्युदाहरण क्या होते हैं? 'उदाह्रियते अस्मिन् इति उदाहरणम्' अर्थात् उदाहरण वह माध्यम हैं जिनके द्वारा व्याकरणशास्त्र में विद्यमान सूत्रों एवं सूत्रान्तर्गत पदों का समुचित अर्थबोधन होता है । उदाहरण के विषय में बताते हुए आचार्य विश्वनाथ कहते हैं कि जहाँ तुल्य अर्थ से युक्त वाक्य के द्वारा दृष्टान्त रूप से प्रदर्शन करने से अभिमत अर्थ प्रकाशित किया जाता है, वह उदाहरण कहलाता है [3]| उदाहरणज्ञान के पश्चात् अब शंका होती है कि प्रत्युदाहरण किसे कहते हैं? प्रत्युदाहरण वह माध्यम है जिसके द्वारा लक्षण में अव्याप्ति, अतिव्याप्ति एवं असंभव इन त्रिविध दोषों का निवारण किया जाता है। सूत्र एवं सूत्र के अंतर्गत विद्यमान पदों के अर्थ स्पष्टीकरण के क्रम में जो सूत्रार्थ अथवा अभिप्राय उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट नहीं होता उसे प्रत्युदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट किया जाता है । अतः प्रत्युदाहरणों के द्वारा सूत्र एवं सूत्रार्थ तथा सूत्रों में विद्यमान पदों का औचित्य निर्धारण किया जाता है । पाणिनीय व्याकरणपरंपरा के अनेक आचार्यों ने उदाहरण-प्रत्युदाहरणों के विषय में अपना मत प्रस्तुत किया है । इस क्रम में सर्वप्रथम आचार्य पाणिनि द्वारा रचित अष्टाध्यायी का महत्त्व है । यद्यपि आचार्य की अष्टाध्यायी में उदाहरण - प्रत्युदाहरणों का प्रत्यक्ष प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होता किंतु अष्टाध्यायी के व्याख्याग्रन्थों में उदाहरण – प्रत्युदाहरणों का बाहुल्य है |

इसी क्रम में वार्तिककार आचार्य कात्यायन ने व्याकरण परंपरा के संवर्धन हेतु आचार्य पाणिनि द्वारा अनिर्दिष्ट शब्दों व प्रयोगों को वार्तिकों के माध्यम से तत्तत्सूत्रों के साथ सन्निबद्ध करते हुए प्रचुर मात्रा में उदाहरण- प्रत्युदाहरणों का प्रयोग प्रस्तुत किया । मूलतः देखा जाये तो प्रत्युदाहरणों का प्रत्यक्ष प्रयोग सर्वप्रथम आचार्य कात्यायन कृत वार्तिकशास्त्र में ही दृष्टिगोचर होता है । यथा - कष्टाय क्रमणे[4] सूत्र जिसका अभिप्राय है कि चतुर्थीसमर्थ कष्टाय शब्द से कुटिलता अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है । सूत्र के अंतर्गत एक वार्तिक सत्रकक्षकृच्छ्रगहनेभ्यः कण्वचिकीर्षायाम् पढ़ा गया है। यह वार्तिक प्रकृत सूत्र कष्टाय क्रमणे के अधिकार क्षेत्र में विस्तार करते हुए कहता है कि कष्ट के अतिरिक्त सत्रादि कुछ अन्य शब्दों से भी क्यङ् प्रत्यय हो जाये किंतु सत्रादि से क्यङ् प्रत्यय कुटिलता अर्थ में न होकर कण्वचिकीर्षा अर्थात् पाप करने की इच्छा अर्थ में हो । यथा - सत्रायते (सत्रं चिकीर्षति), कक्षायते (कक्षं चिकीर्षति) । पदमञ्जरीकार के अनुसार सत्रादि वृत्तिविशेष के विषय में पाप के पर्याय माने जाते हैं [5] तथा ध्यातव्य है कि सनाद्यन्त भी एक वृत्तिविशेष है । अतः इस (सनाद्यन्त) वृत्ति के विषय में सत्रादि को पाप का पर्याय मानकर सत्रायते रूप सिद्ध होता है ।

आगे सत्रादि के पठन के प्रयोजन के विषय में विचार करते हुए कहते हैं - सत्रादिभ्य इति किमर्थम्? कुटिलायऽनुवाकाय क्रामति| अर्थात् उपरोक्त वार्तिक में सत्रादि का ग्रहण क्यों किया गया है? इसके समाधान में आचार्य कहते हैं कि सत्रादि का ग्रहण इसलिये किया गया है जिससे कुटिलायऽनुवाकाय क्रामति इस उदाहरण में अनुवाक शब्द से क्यङ् प्रत्यय न हो क्योंकि अनुवाक का अध्ययन अपेक्षाकृत क्लिष्ट है तथा क्लिष्ट होने से सरल भी नहीं है अतः कहीं अनुवाक शब्द से क्रमण अथवा अनार्जव अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होकर अनिष्ट रूप न बने इसी शंका के समाधान हेतु वार्तिक में सत्रादि का ग्रहण कर दिया गया है । जिससे सिद्ध होता है कि सत्रादि कुछ निश्चित शब्दों से ही प्रत्यय होगा ।

इसके पश्चात् आचार्य पतञ्जलि द्वारा अपने व्याख्यान ग्रंथ महाभाष्य में सूत्रघटक पदों के अर्थविस्तार एवं सङ्कोच को परिभाषित करने हेतु अनेकत्र उदाहरण - प्रत्युदाहरणों का प्रयोग किया गया है । उदाहरणस्वरूप - कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः [6] सूत्र जिसका अर्थ है कि कर्म में स्थित क्रिया के साथ तुल्यक्रिया वाला कर्ता कर्मवद् होता है अर्थात् ऐसा कर्ता जो पहले कर्म था किंतु अब परिवर्तित होकर कर्ता बन गया है तथा जिस क्रिया का आश्रय वह कर्मावस्था में था उसी क्रिया का आश्रय कर्ता बनकर भी है तो उस कर्ता को वे सभी कार्य होते हैं जो पहले कर्म को होते थे । यथा - देवदत्तः काष्ठं भिनत्ति| यहाँ काष्ठं कर्म है, देवदत्त कर्ता है तथा लकड़ी को फाड़ना क्रिया है किंतु यदि काष्ठ इतनी मुलायम है कि स्वयं ही फट जाती है तो उस स्थिति में हम कहते हैं कि भिद्यते काष्ठं स्वयमेव अर्थात् लकड़ी स्वयं फटती है, इस स्थिति मे काष्ठ कर्म न होकर कर्ता बन जाता है किंतु उसमें फटना क्रिया उसी प्रकार विद्यमान रहती है जैसे उसकी कर्मावस्था में थी अतः इस कर्ता (काष्ठ) को मानकर होने वाले कार्य तो होते ही हैं साथ ही कर्मवद्भाव होने से कर्म को मानकर होने वाले कार्य भी हो जाते हैं ।

आगे सूत्र के अर्थ व उदाहरण के ज्ञापन के अनंतर भाष्यकार आचार्य सूत्र में पठित पदों का प्रयोजन बताते हुए लिखते हैं – वत्करणं किमर्थम्? स्वाश्रयमपि यथा स्यात् – भिद्यते कुसूलेनेति। अकर्मकाणां भावे लो भवतीति भावे लो यथा स्यात् | यहाँ वत्करण क्यों किया गया है? इसका उत्तर देते हैं कि वत्करण का प्रयोजन यह है कि स्वाश्रय कार्य भी हो सके तथा भिद्यते कुसूलेन में लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः[7] सूत्रानुसार अकर्मक भिद् धातु से भाव में लकार होकर रूप सिद्ध हो जाये अर्थात् कर्मवद्भाव वाली सभी धातुएँ अकर्मक होती हैं, कर्मवद्भाव की स्थिति में सभी सकर्मक धातुएँ स्वतः ही अकर्मक हो जाती हैं क्योंकि कर्मकर्ता की स्थिति में धातुओं का कर्म स्वतः ही कर्ता बन जाता है तथा फिर वहाँ कोई भी कर्म शेष न रहने से एवं कर्म का अभाव हो जाने से ये धातुएँ अकर्मक कहलाती हैं तथा लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः सूत्र के द्वारा अकर्मक धातुओं से भाव या कर्ता में लकार होता है | यदि सूत्र में वत् न पढ़ा जाये तो कर्मकर्मणा तुल्यक्रियः यह सूत्र बनेगा तथा कर्मसंज्ञा होने लगेगी कर्मसंज्ञा होने के कारण फिर इन धातुओं को अकर्मक नहीं माना जायेगा जिसके परिणामस्वरूप भाव में लकार नहीं होगा क्योंकि भाव में लकार तो अकर्मक धातुओं से ही होता है । अतः तुल्यार्थ में वत् पढ़ने से यह कर्म न होकर कर्म जैसा सिद्ध होता है अर्थात् कर्मवत् पढ़ा जाता है जिससे कर्म के कार्य भी हो जाते हैं तथा यह मूलतः कर्ता स्वाश्रय (भाव) बना रहता है । अतः भाव अर्थ में लकार होने से कर्तृकरणयोस्तृतीया [8] सूत्र के माध्यम से कुसूलेन में कर्ता के अनभिहित होने से उसमें तृतीया विभक्ति हो जाती है । इसी क्रम में पुनः कहते हैं - कर्मणेति किमर्थम्? करणाधिकरणाभ्यां तुल्यक्रियः कर्ता यः स कर्मवन्मा भूत् - साध्वसिश्छिनत्ति, साधु स्थाली पचति | अर्थात् सूत्र में कर्मणा ग्रहण क्यों किया गया है? इसका उत्तर देते हैं कि यहाँ कर्मणा ग्रहण इसलिये किया गया है जिससे करण व अधिकरण की तुल्यक्रिया वाला कर्ता कर्मवत् न हो तथा कर्म की क्रिया से तुल्यता होने पर ही कर्ता कर्मवत् हो अर्थात् यह स्थिति सौकर्यातिशय की विवक्षा में होती है कि किसी भी कारक को अतिसरल बनाने के संबंद्ध में उसका वह कारकत्व लुप्त हो जाता है तथा उसका स्थान कर्तृत्व द्वारा ले लिया जाता है । ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह कारक ही मुख्य कर्ता बनकर कार्य कर रहा है| अतः कर्मणा ग्रहण से यह अभिप्रेत है कि जब सौकर्यातिशय में कर्म कर्ता बन जाये तब तो उपरोक्त सूत्र प्रवृत्त होगा किंतु यदि करण व अधिकरण सौकर्य की विवक्षा में कर्ता बन जाते हैं तो प्रकृत सूत्र द्वारा कर्मवद्भाव नहीं होगा । यथा - साध्वसिश्छिनत्ति, साधु स्थाली पचति । क्रमशः इन उदाहरणों के अर्थ है- तलवार अच्छा काटती है तथा पतीली अच्छा पकाती है जबकि वास्तविक अर्थ यह होता है कि मनुष्य तलवार से शत्रु को काटता है तथा पतीली में चावल पकाता है । यहाँ तलवार करण तथा स्थाली अधिकरण है किंतु सौकर्यविवक्षा में करण तथा अधिकरण का कर्ता के रूप में प्रयोग किया जाता है तो असिश्छिनत्ति तथा स्थाली पचति रूप सिद्ध होते हैं | चूँकि यहाँ कर्म को कर्ता न बनाकर करण व अधिकरण का कर्ता के रूप में प्रयोग किया जाता है अतः छिनत्ति व पचति ये कर्तृवाच्य के रूप बनते हैं किंतु यदि प्रकृत सूत्र में कर्मणा पद का ग्रहण न करते तो उक्त करण व अधिकरण को भी कर्मवद्भाव हो जाता तथा कर्मवद्भाव के परिणामस्वरूप साधु असिश्छिद्यते एवं साधु स्थाली पच्यते ये कर्मवाच्य के रूप सिद्ध होते जो यहाँ अनिष्ट है अतः इस अनिष्टनिवारण हेतु ही सूत्र में कर्मणा पद का ग्रहण किया गया है ।

पुनः प्रकृत सूत्र कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः के विषय में कहते हैं - तुल्यक्रिय इति किमर्थम् ? पचत्योदनं देवदत्तः । तुल्यक्रिय इत्यप्युच्यमानेऽत्र प्राप्नोति । अत्रापि हि कर्मणा तुल्यक्रियः कर्ता | यहाँ तुल्यक्रिय पद का ग्रहण क्यों किया गया है ? इस विषय में कहते हैं कि तुल्यक्रिय पद का ग्रहण इसलिये किया गया है जिससे पचत्योदनं देवदत्तः यहाँ कर्मवद्भाव न हो क्योंकि यहाँ पकाना क्रिया तो देवदत्त द्वारा की जाती है किंतु पकना क्रिया ओदन की है अर्थात् यहाँ पाक क्रिया तो देवदत्त व ओदन दोनों कर रहे हैं किंतु देवदत्त पका रहा है तथा ओदन स्वयं पक रहा है । अतः उपरोक्त उदाहरण में कर्मरूप ओदन तथा कर्तृरूप देवदत्त के तुल्यक्रिय होने से कर्मवद्भाव प्राप्त होता है तथा अनिष्ट रूप पच्यते ओदनः बनने लगता है । इसके समाधान में कहते हैं कि जिस कर्म के कर्ता बन जाने पर भी वही क्रिया लक्षित होती है जो कर्मदशा में थी तो उसी अवस्था में कर्मवद्भाव होता है, प्रकृत उदाहरण पचत्योदनं देवदत्तः में नहीं ।

इसी परंपरा का अनुसरण करते हुए अष्टाध्यायी के प्रमुख वृत्तिग्रंथ काशिका में सूत्र एवं सूत्रघटक पदों के सम्यक् बोध हेतु उदाहरण-प्रत्युदाहरणों का अतिरेक है। यथा- वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्[1] सूत्र जिसका अभिप्राय है कि धातु के अधिकार में असमानरूप वाले अपवाद प्रत्यय (अर्थात् ऐसे प्रत्यय जो अनुबन्ध लोप के पश्चात् असमानरूप वाले हो) उत्सर्ग के विकल्प से बाधक होते हैं, स्त्रियाम् के अधिकार में होने वाले प्रत्यय को छोड़कर अर्थात् स्त्रियाम् के अधिकार में असरूप अपवाद प्रत्यय नित्य ही उत्सर्ग के बाधक होते हैं । यथा - विक्षेपकः, विक्षेप्ता, विक्षिपकः। उपरोक्त तीनों उदाहरण क्रमशः ण्वुल्तृचौ[8] से ण्वुल् व तृच् तथा इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः[9] से क प्रत्यय होकर सिद्ध होते हैं। इस

स्थिति में ण्वुल् व तृच् प्रत्यय उत्सर्ग हैं तथा क प्रत्यय अपवाद है अतः सूत्रानुसार (असरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग के विकल्प से बाधक होते हैं) क प्रत्यय के विषय में असरूप होने से ण्वुल् व तृच् प्रत्यय से भी रूप सिद्ध होते हैं – "विक्षिप् + ण्वुल् = विक्षेपकः, विक्षिप् + तृच् = विक्षेप्ता, विक्षिप् + क = विक्षिपकः|"

इसी सूत्र के अंतर्गत प्रत्युदाहरण प्रस्तुत करते हुए काशिकाकार पढ़ते हैं - असरूप इति किम् ? कर्मण्यण् इत्युत्सर्गः आतोऽनुपसर्गे कः इत्यपवादः, स नित्यं बाधको भवति । गोदः । कम्बलदः। नानुबन्धकृतमसारूप्यम् | अर्थात् प्रकृत सूत्र में असरूप ग्रहण का क्या प्रयोजन है ? इसका समाधान करते हुए कहते हैं – कर्मण्यण्[10] सूत्र जिसका अभिप्राय है कर्म उपपद में रहते धातु से अण् प्रत्यय होता है कर्ता अर्थ में, यह उत्सर्गसूत्र है तथा आतोऽनुपसर्गे कः[11] जिसका अर्थ है अनुपसर्ग आकारन्त धातु से कर्म उपपद में रहते क प्रत्यय होता है, अपवादसूत्र है, जो (आतोऽनुपसर्गे कः) अण् का नित्य बाधक होता है । अतः प्रकृत सूत्र वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् के नियमानुसार असरूप अपवाद प्रत्यय क के विकल्प से बाधक होने के कारण अण् तथा क दोनों प्रत्ययों से युक्त दो रूप सिद्ध होने चाहिये परंतु व्याकरणशास्त्रीय परिभाषा नानुबन्धकृतमसारूप्यम्[12] के अनुसार अनुबन्ध को मानकर होने वाली असरूपता का ग्रहण नहीं किया जाता तथा अनुबन्धमुक्त पदार्थ ही उपस्थित होता है । अतः यदि उत्सर्ग व अपवाद प्रत्यय अनुबन्धरहित होने पर समानरूप वाले हो जाते हैं तो वहाँ केवल अपवाद प्रत्यय का रूप बनता है इसलिये देखा जाये तो अनुबन्धलोप के अनन्तर अण् तथा क दोनों प्रत्यय असरूप न होकर समानरूप वाले (अ, अ) हो जाते हैं। अतः पूर्वनियमानुसार समानरूपवाले प्रत्ययों में अपवाद नित्य ही उत्सर्ग का बाधक होता है । इस प्रकार गोदः, कम्बलदः उदाहरणों में कर्मण्यण् सूत्र द्वारा कर्म उपपद में रहते प्राप्त अण् प्रत्यय अपवाद सूत्र आतोऽनुपसर्गे कः द्वारा बाध लिया जाता है तथा क प्रत्यय होकर रूप सिद्ध होते हैं - गोदः, कम्बलदः।

इसी प्रकार पुनः कहते हैं – अस्त्रियामिति किम् ? स्त्रियां क्तिन् इत्युत्सर्गः अ प्रत्ययात् इत्यपवादः स बाधको भवति चिकीर्षा, जिहीर्षा | प्रकृत सूत्र वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् में अस्त्रियाम् पद का ग्रहण क्यों किया गया है? इसके समाधान में कहते हैं कि अस्त्रियाम् ग्रहण इस बात का ज्ञापक है कि स्त्रियां क्तिन् के अधिकार में विहित प्रत्ययों में असरूप तथा समानरूपप्रत्यय वाली विकल्पव्यवस्था नहीं होती। वहाँ केवल अपवाद प्रत्यय होता है तथा अपवाद का ही एक रूप बनता है । यथा – चिकीर्षा, जिहीर्षा । प्रकृत उदाहरणों में स्त्रियां क्तिन्[13] सूत्र जिसका अभिप्राय है कि स्त्रीलिंग में धातु से भाव आदि अर्थों में क्तिन् प्रत्यय होता है, उत्सर्ग सूत्र है तथा अ प्रत्ययात्[14] सूत्र जिसका अर्थ है कि प्रत्ययान्त धातु से स्त्रीलिंग में अ प्रत्यय होता है, यह अपवाद सूत्र है । अतः सूत्र में अस्त्रियाम् पद के ग्रहण किये जाने के कारण यहाँ अपवाद नित्य ही उत्सर्ग का बाधक होता है तथा सन्नन्त कृ व हृ धातु से अ प्रत्यय होकर स्त्रीलिंग में चिकीर्षा, जिहीर्षा रूप सिद्ध होते हैं ।

उदाहरण- प्रत्युदाहरणों की यह श्रृंखला कौमुदी परंपरा में भी अपरिवर्तित रूप में प्राप्त होती है । भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में भी अनेक स्थलों पर उदाहरण - प्रत्युदाहरण बहुलता में प्राप्त होते हैं । यथा - वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में स्त्रीप्रत्ययप्रकरण के अंतर्गत पठित सूत्र काण्डान्तात् क्षेत्रे [15] का अभिप्राय है कि तद्धित प्रत्यय का लुक् हुआ हो तो क्षेत्र अर्थ वाच्य रहते काण्डशब्दान्त द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय नहीं होता है, स्त्रीत्व की विवक्षा में । यथा – द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः | प्रकृत उदाहरण में द्विकाण्डा (द्वे काण्डे प्रमाणम् अस्याः) शब्द द्विगुसंज्ञक है तथा यहाँ प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः[16] सूत्र से मात्रच् आदि तद्धित प्रत्यय होकर प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम् से उन तद्धित प्रत्ययों का लुक् भी होता है और यह काण्डान्त शब्द भी है अतः यहाँ काण्डान्तात् क्षेत्रे सूत्र द्वारा द्विगोः[17] सूत्र से प्राप्त ङीप् का निषेध कर दिया जाता है तथा स्त्रीत्व की विवक्षा में अजाद्यतष्टाप् [18] सूत्र से टाप् प्रत्यय होकर रूप सिद्ध होता है। प्रकृत सूत्र के अंतर्गत प्रत्युदाहरण की चर्चा करते हुए भट्टोजिदीक्षित लिखते हैं – क्षेत्रे किम् ? द्विकाण्डी रज्जुः | अर्थात् सूत्र में क्षेत्र पद का ग्रहण क्यों किया गया है ? जिसके समाधान में कहते हैं कि प्रकृत सूत्र में क्षेत्र पद के ग्रहण का प्रयोजन यह है कि क्षेत्र शब्द वाच्य होने पर ही द्विगोः से प्राप्त ङीप् का निषेध होवे, अन्यत्र नहीं । अतः द्विकाण्डी रज्जुः इस उदाहरण के अंतर्गत तद्धितलुक् द्विगुसंज्ञक काण्डशब्दान्त प्रातिपदिक होने पर भी ङीप् का निषेध नहीं होता क्योंकि उपरोक्त उदाहरण द्विकाण्डी रज्जुः में क्षेत्र अर्थ वाच्य नहीं है अपितु रज्जु अर्थ वाच्य है । अतः यदि सूत्र में क्षेत्र पद का ग्रहण न करते तो अन्य स्थलों पर ङीप् का निषेध होने लगता जिससे अनिष्ट रूपसिद्धि होने लगती। अतः इस अनिष्टनिवारण हेतु ही सूत्र में क्षेत्र पद का ग्रहण किया गया है । इस प्रकार भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में प्रत्युदाहरणों का विशद वर्णन प्राप्त होता है।

इसी क्रम में व्याकरणशास्त्र के अनेक टीकाग्रंथों व व्याख्याग्रंथों यथा- जिनेन्द्रबुद्धि व हरदत्त मिश्र द्वारा रचित काशिका की टीकाओं न्यास तथा पदमंजरी, भाष्य के टीकाग्रंथ प्रदीप,

सिद्धान्तकौमुदी के व्याख्यान ग्रंथ प्रौढ़मनोरमा, आचार्य नागेशभट्टविरचित लघुशब्देन्दुशेखर तथा आचार्य वरदराजप्रणीत लघुसिद्धान्तकौमुदी प्रभृति व्याकरणग्रंथों में भी आचार्यों द्वारा स्वीकृत परंपरा का सम्मान करते हुए अनेकशः उदाहरण - प्रत्युदाहरणों का प्रयोग है जिनके माध्यम से सूत्र एवं सूत्रार्थ स्पष्टीकरण में सहायता प्राप्त होती है । इस प्रकार पाणिनीय व्याकरणपरंपरा में अनेकत्र उदाहरण - प्रत्युदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं जो संस्कृत व्याकरणशास्त्र के सारल्य हेतु सोपान का कार्य करते हैं ।

सन्दर्भ

1. उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्ताकरत्वं हि वार्तिकत्वम् (महाभाष्य प्रदीपोद्योत-७/३/५९)
2. अथ व्याकरणमित्यस्य शब्दस्य कः पदार्थः ? ननु च तदैव सूत्रं विगृहीतं व्याख्यानं भवति । न केवलानि चर्चापदानि व्याख्यानं - वृद्धिः आत् , ऐज् इति । किं तर्हि। उदाहरणं प्रत्युदाहरणं वाक्याध्याहार इत्येतत् समुदितं व्याख्यानं भवति (महाभाष्य-पस्पशा०)
3. यत्र तुल्यार्थयुक्तेन वाक्येनाभिप्रदर्शनात् ।
4. साध्यतेऽभिमतश्चार्थस्तदुदाहरणं मतम् ॥(साहित्य दर्पण- ६ परि०)
5. पाणिनि अष्टाध्यायी -३/१/१४
6. सत्त्रादयो हि वृत्तिविषये पापपर्यायास्तेभ्यश्चिकीर्षायां प्रत्ययः (पदमञ्जरी -३/१/१४)|
7. पा. अ.-३/१/८७
8. पा. अ. -३/४/६९
9. पा. अ.-२/३/१८
10. पा. अ. -३/१/९४
11. पा. अ.-३/१/१३३
12. पा. अ.-३/१/१३५
13. पा. अ.-३/२/१
14. पा. अ.-३/२/३
15. व्याडिकृतपरिभाषा (१५)
16. पा. अ.-३/३/९४
17. पा. अ.-३/३/१०२
18. पा. अ.-४/१/२३
19. पा. अ.-५/२/३७
20. पा. अ.-४/१/२१
21. पा. अ.-४/१/४